ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 2, February 2015

मोहन राकेश के कथा साहित्य में मानव संवेदना

Vijendra Prasad Meena

Lecturer in Hindi, Government PG College, Karauli, Rajasthan, India

सार

मोहन राकेश (८ जनवरी १९२५ - ३ दिसम्बर, १९७२) नई कहानी आन्दोलन के सशक्त हस्ताक्षर थे। पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेज़ी में एम ए किया। जीविकोपार्जन के लिये अध्यापन किया। कुछ वर्षों तक 'सारिका' के संपादक भी रहे। 'आषाढ़ का एक दिन','आधे अधूरे' और लहरों के राजहंस के रचनाकार। 'संगीत नाटक अकादमी' से सम्मानित। ३ दिसम्बर १९७२ को नयी दिल्ली में आकस्मिक निधन। मोहन राकेश मूलतः एक सिंधी परिवार से थे। उनके पिता कर्मचन्द बहुत पहले सिंध से पंजाब आ गए थे। वे हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न नाट्य लेखक और उपन्यासकार हैं। समाज के संवेदनशील व्यक्ति और समय के प्रवाह से एक अनुभूति क्षण चुनकर उन दोनों के सार्थक सम्बन्ध को खोज निकालना, राकेश की कहानियों की विषय-वस्तु है। मोहन राकेश की डायरी हिंदी में इस विधा की सबसे सुंदर कृतियों में एक मानी जाती है।

परिचय

मोहन राकेश को कहानी के बाद सफलता नाट्य-लेखन के क्षेत्र में मिली। हिंदी नाटकों में भारतेंदु और प्रसाद के बाद का दौर मोहन राकेश का दौर है जिसें हिंदी नाटकों को फिर से रंगमंच से जोड़ा। हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद यदि लीक से हटकर कोई नाम उभरता है तो मोहन राकेश का। हालाँकि बीच में और भी कई नाम आते हैं जिन्होंने आधुनिक हिन्दी नाटक की विकास-यात्रा में महत्त्वपूर्ण पड़ाव तय किए हैं; किन्तु मोहन राकेश का लेखन एक दूसरे ध्रुवान्त पर नज़र आता है। इसलिए ही नहीं कि उन्होंने अच्छे नाटक लिखे, बल्कि इसलिए भी कि उन्होंने हिन्दी नाटक को अँधेरे बन्द कमरों से बाहर निकाला और उसे युगों के रोमानी ऐन्द्रजालिक सम्मोहक से उबारकर एक नए दौर के साथ जोड़कर दिखाया। वस्तुतः मोहन राकेश के नाटक केवल हिन्दी के नाटक नहीं हैं। वे हिन्दी में लिखे अवश्य गए हैं, किन्तु वे समकालीन भारतीय नाट्य प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। उन्होंने हिन्दी नाटक को पहली बार अखिल भारतीय स्तर ही नहीं प्रदान किया वरन् उसके सदियों के अलग-थलग प्रवाह को विश्व नाटक की एक सामान्य धारा की ओर भी अग्रसर किया। प्रमुख भारतीय निर्देशकों इब्राहीम अलकाजी, ओम शिवपुरी, अरविन्द गौड़, श्यामानन्द जालान, राम गोपाल बजाज और दिनेश ठाकुर ने मोहन राकेश के नाटकों का निर्देशन किया।[1]

मोहन राकेश के दो नाटकों आषाढ़ का एक दिन तथा लहरों के राजहंस में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेने पर भी आधुनिक मनुष्य के अंतर्द्वंद और संशयों की ही गाथा कही गयी है। एक नाटक की पृष्ठभूमि जहां गुप्तकाल है तो दूसरा बौद्धकाल के समय के ऊपर लिखा गया है। आषाढ़ का एक दिन में जहां सफलता और प्रेम में एक को चुनने के द्वंद्व से जूझते कालिदास एक रचनाकार और एक आधुनिक मनुष्य के मन की पहेलियों को सामने रखते हैं वहीं प्रेम में टूटकर भी प्रेम को नहीं टूटने देने वाली इस नाटक की नायिका के रूप में हिंदी साहित्य को एक अविस्मरणीय पात्र मिला है। लहरों के राजहंस में और भी जटिल प्रश्नों को उठाते हुए जीवन की सार्थकता, भौतिक जीवन और अध्यात्मिक जीवन के द्वन्द, दूसरों के द्वारा अपने मत को दुनिया पर थोपने का आग्रह जैसे विषय उठाये गए हैं। राकेश के नाटकों को रंगमंच पर मिली शानदार सफलता इस बात का गवाह बनी कि नाटक और रंगमंच के बीच कोई खाई नही है। मोहन राकेश का तीसरा व सबसे लोकप्रिय नाटक आधे अधूरे है । जहाँ नाटककार ने मध्यवर्गीय परिवार की दमित इच्छाओ कुंठाओ व विसंगतियो को दर्शाया है । इस नाटक की पृष्ठभूमि एतिहासिक न होकर आधुनिक मध्यवर्गीय समाज है । आधे अधूरे मे वर्तमान जीवन के टूटते हुए संबंधो ,मध्यवर्गीय परिवार के कलहपुर्ण वातावरण विघटन ,सन्त्रास ,व्यक्ति के आधे अधूरे व्यक्तित्व तथा अस्तित्व का यथात्मक सजीव चित्रण हुआ है । मोहन राकेश का यह नाटक , अनिता औलक की कहानी दिन से दिन का नाट्यरुपांतरण है ।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 2, February 2015

विचार-विमर्श

हिंदी उपन्यास क्षेत्र में भी मोहन राकेश का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने संख्या में अधिक उपन्यास नहीं लिखे। किंतु आधुनिक युग के स्त्री-पुरुष के संबंधों, विशेषतः दाम्पत्य जीवन में पडी धरारों, विसंगतियों और विडंबनाओं के बीच व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधों में तनाव एवं बिखराव आदि का चित्रण करने में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। मोहन राकेश मध्य वर्ग के मानवीय रिश्तों की द्वन्द्व पीडा के उपन्यासकार हैं। इन मानवीय रिश्तों के केंद्र में नरनारी के रिश्तों को रखकर देखा गया है। उनके उपन्यास आधुनिक मानव-संबंधों की यथार्थता को नए संदर्भों में टटोलने की कोशिश करते हैं। संबंधों के अधूरेपन और आपसी संप्रेषणीयता के टूटते सूत्रों के बीच अर्थहीन होते जा रहे व्यक्ति का अकेलापन है और सही जिंदगी के लिए सार्थक संदर्भों की खोज की छटपटाहट है और अपने कद की पूरी उँचाई में खडे होने की ललक है। पर संबंध उलझते रहते हैं। व्यक्ति बिखरता रहता है और सार्थक संदर्भों की खोज अवरुध्द स्थितियों में एक अनुगूँज छोड जाती है।

अँधेरे बंद कमरे

"अँधेरे बंद कमरे" उपन्यास के कथानक की पृष्ट-भूमि स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद की दिल्ली का जीवन है, जहाँ की भीड़-भाड़ में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से अपरिचित-सा दौडता चला जा रहा है। मोहन राकेश ने दिल्ली के सांस्कृतिक राजनैतिक और पारिवारिक जीवन के खोखलेपन का चित्रण करते हुए स्त्री-पुरुष के निर्बन्ध संबंधों की विडंबना को चित्रित किया है। उसने स्त्रियों के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण ग्रहण कर उन्हें अपनी सहानुभूति प्रदान की है, किंतु वह मधुसूदन और नीलिमा की कथाओं में सामंजस्य उपस्थित नहीं कर पाया। "अँधेरे बंद कमरे" उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं मधुसूदन, हरबंस, शुक्ला और नीलिमा। कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार और मधुसूदन का आदर्शवाद अवश्य खटकनेवाली बातें हैं। यह उपन्यास आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर आधारित है। लेखक ने स्वयं बिना उत्तर दिये प्रारंभ में तीनों प्रश्न उठाये हैं, क्या यह उपन्यास दिल्ली के जीवन का रेखाचित्र है? क्या यह पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा है? क्या यह पति-पत्नी के आंतरिक द्वन्द्व की कहानी है? स्पष्ट है कि उपन्यास पढ़ते समय पाठक के मन में ये तीनों प्रश्न घूमते रहते हैं, पर अंत में उसे निराशा होना पडता है। वह न तो मधुसूदन की आत्मकथा ही है और न दिल्ली के जीवन का सही चित्र ही। वह आधुनिक पति-पत्नी के आंतरिक द्वन्द्व को भी ठीक ढंग से सही परिप्रेक्ष्य में उपस्थित नहीं कर पाता। ये सब तत्व उपन्यास को अपूर्ण बनाते हैं इस उपन्यास के मंतव्य को लेकर मोहन राकेश की प्रतिबध्दता, संवेदनाशीलता एवं रचना-दृष्टि पर कई प्रश्न चिह्न लगाये जा सकते हैं। अनिश्चितता एवं असंदिग्धता के कारण उनकी दृष्टि एवं संवेदना के ठोस आधार दिखाई न पडते हैं। कलात्मकता से परिपूर्ण होने पर भी मूल्यहीनता के कारण उनकी इस रचना में निश्चित जीवन-दर्शन का प्रतिपादन न हो पाया है। विसंगतिजन्य युगीन परिवेश की व्याख्या करने का प्रयत्न किए जाने पर भी विभिन्न क्षेत्रों में मूल्यहीनता व खोखलेपन को दर्शाने में तथा कुछ स्त्री पात्रों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण ग्रहण कर उनके प्रति सहानुभूति को स्पष्टतः व्यक्त करने में नाटककार को आशातीत सफलता प्राप्त न हुई है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि मोहन राकेश ने अपने इन उपन्यासों में किसी समाजोन्मुखी दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया है। कुछ हद तक इस कृति में आधुनिक परिवेश में यथार्थ के धरातल पर मानवीय संबंधों के बनते एवं बिगडते नए संदर्भों को खोजने का प्रयास किया गाया है। इसकी उपलब्धि है इस उपन्यास में विसंगतिपूर्ण महानगरीय परिवेश में आधुनिक व्यक्ति के जीवन-संघर्ष का सशक्त अंकन किया गाया है।[2]

न आनेवाला कल

मोहन राकेश कृत "न आनेवाला कल" एक भारतीय क्रिष्टियन स्कूल के वातावरण को चित्रित करता है। यह सामाजिक उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। नायक के रुप में "मैं" को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास की कथा-वस्तु संक्षिप्त है। इस सामाजिक उपन्यास के आरंभ में चौपाल के नीरस वातावरण तथा विद्यालय की छिद्रान्वेषी कूटनीति से कथा-प्रवाह आगे चलता है। नायक इस विद्यालय का हिंदी अध्यापक है और पूर्व-पत्नी की मृत्यु के पश्चात दूसरी पत्नी के दुर्व्यवहार के कारण खिन्न होकर विद्यालय से त्याग-पत्र दे देता है। उसके इस त्याग-पत्र को विद्यालय में व्यापक प्रतिक्रिया होती है। हेड मास्टर से लेकर चपरासी और उसकी बीबी तक उस से प्रभावित होते हैं। अंत में नायक बिदाई लेकर चला जाता है। पति-पत्नी के तलाकों और अलगावों को लेकर इस उपन्यास की रचना की गई है। लेकिन पाठकों के समक्ष कोई स्पष्ट तस्वीर रखने में असमर्थ है। इस उपन्यास के

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 2, February 2015

सभी पात्र अपने लक्ष्यहीनता एवं अस्पष्ट विचारों के कारण निराले प्रतीत होते हैं। सभी पात्र हिवलर, नुरुला काशनी, शोभा, बानी आदि अपने चारों ओर खिंची हुई परिधियों में विचरण करते हुए भी, यह नहीं जान पाते कि वे चाहते क्या है? वे अपने आनेवाले कल को पहचानना चाहते हैं, किंतु उस कल की रुप-रेखा उनके सामने स्पष्ट नहीं है। उपन्यासकार मोहन राकेश ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों, संत्रास, अकेलेपन, मानव संबंधों की कृत्रिमता और मृत्यु-भय आदि को अस्तित्ववादी चिंतन के प्रकाश में स्पष्ट करने के चेष्टा की है। उन्होंने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं जिन में व्यकित मुक्ति पाने के लिए छटपटा उठता है। नुरुला और शोभा दोनों पात्र नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, किंतु अपने अतीत और वर्तमान में रहते हुए अहं को चोट पहुँचाते हुए अपने अस्तित्व की समस्या से जूझते रहते हैं।

उपन्यास नितांत यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखा गया है। किंतु यह यथार्थवादी है नहीं। बीच-बीच में मानसिक ऊहा-पोह और तर्क-वितर्क का इतना जंजाल है कि पाठक ऊब जाता है। माँस, मदिरा, रोमांस और पारस्परिक छल कपट, ईर्ष्या द्वेष का बाजार गर्म है। किंतु उपन्यास का अंत जितने भोंडे और जुगुप्सित ढंग से हुआ है वह मोहन राकेश जैसे यशस्वी लेखक से अप्रत्याशित है। शायद उपन्यास की नीरसता को दूर करने के लिए लेखक को अश्लील चित्रण के सिवाय कोई दूसरा उपाय ज्ञात नहीं था। मोहन राकेश जैसे ख्याति-प्राप्ति रचनाकार एवं संवेदनाशील कलाकार की लेखनी से इस प्रकार स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबंधों के कथ्य के रुप में लेकर इस उपन्यास की निसृत होना अत्यंत विवादस्पद एवं निराशाजनक बात अवश्य है। एक विद्यालय के अध्यापक अपने विद्यालय के चपरासी की पत्नी के साथ व्यभिचार करे और उसका संगोपांग वर्णन प्रस्तुत करना अवांछनीय है। यद्यपि किसी एक समस्या के प्रतिपादन की दृष्टि से व विशिष्ट जीवन-दृष्टि व संवेदना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस उपन्यास का कोई महत्व नहीं रहा, बल्कि विसंगतिपूर्ण परिवेश में आधुनिक मानव की नियति व उसकी अस्तित्ववादी विचार-धारा को स्पष्ट अभिव्यक्ति देने में इसका महत्व अवश्य रहा है।

अंतराल

"अंतराल" मोहन राकेश का तीसरा उपन्यास है। आधुनिक युग के मध्य वित्तीय परिवारों में स्त्री-पुरुषों के वैवाहिक संबंधों के बनने व बिगडने के पीछे कई समाजार्थिक कारणों को लेकर इस उपन्यास की रचना की गयी है। अंतराल का लेखक अपनी अभिव्यक्ति और भाव-बोध में नया है। इस में श्यामा और कुमार इन दो चरित्रों के माध्यम से अनेक क्षेत्रों में आबध्द और घुटन महसूस करते हुए स्त्री-पुरुष की मनःस्थितियों का चित्रण पाया जाता है। श्यामा का विवाह साढ़े तीन वर्ष पूर्व हुआ था और उस बीच वह केवल डेढ़ वर्ष अपने पतिदेव के पास रही। विधवा होने का बाद श्यामा एक अजीब-सी स्थिति का अनुभव कर अपने अतीत को भूल जाने का उपक्रम करती है। वह सोचती है कि देव के मन में उसे लेकर कोई भावना भी तो केवल अधिकार की। उसने शायद कभी अपने पति को प्यार नहीं किया। इसके बावजूद इस अंतहीन संघर्ष में उसने अनुभव किया कि एक पुरुष का साथ नितांत आवश्यक है। इसी तलाश में उसकी भेंट कुमार से हो गयी। कुमार की स्थिति भी लग-भग समान है। उसने विवाह किया था और फिर पत्नी को छोड दिया था, क्योंकि वह उसका साथ निभा नहीं सका। समान स्थितियों के बावजूद कुमार और श्यामा के चिंतन में गहरी खाई स्पष्ट नजर आती है। कुमार का विद्रोह मन समूची समाज व्यवस्था का विद्रोह करता है। उसे यह बेमानी लगता है कि स्त्री और पुरुष एक सडान्ध और घुटन भरे वातावरण में दबते रहें और अपनी स्वाभाविकता के साथ विश्वासघात करें। श्यामा द्वन्द्वों और छलनाओं के बीच तैरती हुई एक नारी है। वह कुमार के आकर्षण से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। उसके पास अनायास आ जाती है, [3] लेकिन स्वयं समर्पित होने में उसके भीतर का कुछ उसे काट-काट जाता है। वह कुमार के पास आकर दूर जाती है, फिर आती है, फिर चली जाती है, और फिर... एक माँ का यह भी आता है कि वह अपनी बेटी को देखकर अनुभव करती है कि जैसे वह जंगली जानवर है, जिसे उसका मृतक पति उसके पास छोड गया है। उपन्यास का अंत दोनों का अलगाव में है, लेकिन दूर रह कर भी श्यामा के लिए कुमार प्रतीक बना रहता है। सच पूछा जाय तो श्यामा की एक कहानी उसकी शारीरिक आकांक्षाओं की है, दूसरी उसके आंतरिक उद्वेगों की। पर ये दो कहानियों से टकराती, खंडित होती और जुडती चलती हैं। उनके अपने कितने कितने संदर्भ हैं, वे संदर्भ जो कि यथार्थ भी हैं और स्वप्न भी। इसी जमीन के बीच में कुमार की कहानी टकराती और खंडित होती आगे चलती है। इन बिंदुओं के

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 2, February 2015

बीच की खाई में हैं रेल की पटरियाँ, प्यालियों की तल–छट मौन आग्रह, रिश्ते अंग, गिरिजाघर का क्रास और न जाने कौन–कौन सी आवाजें। इस में राकेश ने श्यामा के माध्यम से आज की भ्रमित नारी का सही चित्रण किया है। वह कुमार का सान्निध्य चाहती हुई भी उसे सहज समर्पण नहीं करती और फिर सहज समर्पण के बाद उसे स्वीकार भी नहीं करती। कुमार इस स्वीकार्य और अस्वीकार्य की भूमिका में नितांत एकांगी रह जाता है। मनोविज्ञान के आधार पर भी दोनों चरित्र अपनी स्थिति में मजबूत हैं। इस प्रकार सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास में एक विपथगामिनी नारी के असंतुष्ट जीवन की रुप–रेखा को प्रस्तुत करते हुए वैवाहिक जीवन की विडंबनाओं तथा विकृत यौन संबंधों को यथार्थ ढंग से अंकित करने का प्रयास किया है।

अन्य उपन्यास

उक्त उपन्यासों के अतिरिक्त "कई एक अकेले", "काँपता हुआ दरिया", "स्याहा और सफेद", "गुंझल" और "नीली रोशनी की बाँह" आदि उपन्यासों में लेखक ने स्वयं को नितांत यथार्थवादी दिखलाने का प्रयास किया, किंतु आधुनिकता का आवरण ओढकर वह अपने यथार्थ से पूर्णतः संबंध न कर सका।

परिणाम

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है । किंतु नाटककार के रूप में उनका स्थान सर्वोपरी है । आधुनिक हिन्दी नाटक के विकास यात्रा में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे - अधूरे' ने महत्वपूर्ण योगदान निभाया है ।नाटक के बारे में राकेश की धारणा है कि जिस नाटक में रंग मंचीय अपेक्षाओं को उपेक्षा हुई, साहित्यिक मूल्य रहते हुए भी नाट्य कृति नहीं मानी जा सकती। यह कथन से स्पष्ट होता है कि नाटक की संपूर्णता अभिनय – प्रदर्शन में निर्भर है । इस दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे - अधूरे' और 'पैर तले की जमीन' दूसरों को नमूना बनकर रहता है ।

आषाढ़ का एक दिन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक की श्रृंखला में 'आषाढ़ का एक दिन' एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उल्लेखनीय है । यह राकेश का सर्वप्रथम, बहुचर्चित तथा लोक प्रिय नाटक है । इसमें कवि कालिदास को एक प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में ऐतिहासिक पात्रों के साथ काल्पनिक पात्र भी है । राकेश ने इतिहास और कल्पना के सामंजस्य से प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों को समन्वित करके शाश्वत सत्य को युगानुरूप पुष्ट किया है । इस नाटक का कालिदास इतिहास का कालिदास नहीं, राकेश – कालीन कालिदास है ।[1]

लहरों के राजहंस

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा, सशक्त नाटक है । 'आषाढ़ का एक दिन' यदि भावना में भावना का वरण की कहानी है तो 'लहरों के राजहंस' नारी के आकर्षण – विकर्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति है । एक में समर्पित नारी का चित्रण है तो दूसरे में रूप पर गर्व करने वाली नारी की विविध मन स्थितियों के संदर्भों का आलेखन है । कालिदास अपार मानसिक संघर्षों से पीड़ित आधुनिक मानव का प्रतिरूप तो नन्द प्रवृत्ति और निवृत्ति में पिसकर छटपटाते हुए प्राणों को लेकर जीवन के चौराहे पर खड़ा है । इसमें नाटककार राकेश ने भौतिकता और आध्यात्मिकता के मध्य उलझे हुए व्यक्ति की चेतना को नन्द और सुन्दरी के द्वंद्व के माध्यम से मुखरित करने का प्रयास किया है ।

आधे – अधूरे

यह नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की तुलना में भिन्न कोटि का नाटक है । आलोच्य नाटक में आज के मानव की अनियंत्रित एवं अंतहीन यंत्रणाओं के बीच नारी मुक्ति भावना, वैवाहिक संघर्षों की विडंबना, पुरुष के अधूरेपन तथा विघटनशील जीवन मूल्यों का प्रकर्ष है । समूचा नाटक घर के चार दीवार के अंदर के अधूरापन की कथा व्यंजित करता है ।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 2, February 2015

'आधे – अधूरे' में राकेश ने रूमानियत और इतिहास के संदर्भों की उपेक्षा करके औसत दर्जे के आदमी को अपनी विषय वस्तु का आधार बनाया है ।

संक्षेप में कहें तो 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की तुलना में 'आधे - अधूरे' हिन्दी नाटककारों की इक्कीसवीं सदी में जाने वाली पीढ़ी के लिए चुनौती के नवीन आयाम उद्‌घाटित करता ।

पैर तले की ज़मीन

'पैर तले की ज़मीन' मोहन राकेश का अंतिम, किंतु अधूरा नाटक है जिसे उनके आत्म मित्र कमलेश्वर ने राकेश के मृत्यु के बाद पूरित किया । अनिता राकेश के शब्दों में :- " पैर तले की ज़मीन " को अपनी आँखें मूंद जाने से वर्षों पहले ही राकेश ने लिखा था । जिस दिन धोखा लेकर वे सदा के लिए चले गये थे तब भी टाइपरैटर पर इसी टक का एक पृष्ठ, आधा टाइप किया, आधा खाली रह गया था ।"(पैर तले की ज़मीन, अनिता राकेश, पृष्ठ - 5) इस नाटक में राकेश ने शब्दों और नेपथ्य की ध्वनियों के मिले – जुले प्रभाव को रंगमंच पर एक नये प्रयोग के रूप में प्रस्तुत कर वर्तमान युग में व्यक्ति के सामाजिक मूल्य – विघटन तथा मानवीय संबंधों के खोखलापन को मूर्त किया है ।[2]

निष्कर्ष

मोहन राकेश के नाटक के अध्ययन हमें यह निष्कर्ष पर पहुंचाते है कि पारिवारिक – वातावरण, शिक्षा - दीक्षा तथा अनुप्रासंगिक क्रिया – कलापों के एकीकृत रूप से नाटककार मोहन राकेश का व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण हुआ ।

यद्यपि राकेश की पकड़ नाटक के साथ कहानी, उपन्यास जैसी साहित्यिक विधाओं में भी थी तो भी इनकी ख्याति नाटककार के रूप में सचमुच अद्वितीय रही । मोहन राकेश के बाहर – भीतर चलते रहे तनाव ने समयोचित रूप से उन्हें कुछ करने का मौका न दिया । राकेश की मानसिकता उनके नाटकों के कालिदास, नन्द और महेन्द्रनाथ में भी स्पष्ट उभरकर आया ।

संक्षेप में कहें तो हिन्दी नाटक और रंगमंच को एक सही तथा सार्थक पहचान देने की दिशा में मोहन राकेश का स्थान हिन्दी नाटककारों अग्र गण्य है। उन्होंने अपनी मौलिक दृष्टि, भावपूर्ण संवेदना तथा जीवन के अनुभव – वैविध्य के आधार पर हिन्दी नाटक को कथ्य एवं शिल्प पर परंपरागत दृष्टिकोण से मुक्त कर विकास के नये आयामों से परिचित कराया ।[3]

संदर्भ

1) अपने दौर के महानायक कहलाए मोहन राकेश (प्रभासाक्षी)
2) नई कहानी आंदोलन के स्तंभ मोहन राकेश (प्रभासाक्षी)
3) मोहन राकेश कहानी, निबंध Archived 2015 at the Wayback Machine